॥ श्रीहरिः ॥

1633▲

एक संतकी वसीयत



गीताप्रेस, गोरखपुर

1633

॥ श्रीहरिः ॥

एक संतकी वसीयत

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

एक संतकी वसीयत*

श्रीभगवान्‌की असीम, अहैतुकी कृपासे ही जीवको मानवशरीर मिलता है। इसका एकमात्र उद्देश्य केवल भगवत्प्राप्ति ही है। परंतु मनुष्य इस शरीरको प्राप्त करनेके बाद अपने मूल उद्देश्यको भूलकर शरीरके साथ दृढ़तासे तादात्म्य कर लेता है और इसके सुखको ही परम सुख मानने लगता है। शरीरको सत्ता और महत्ता देकर उसके साथ अपना सम्बन्ध मान लेनेके कारण उसका शरीरसे इतना मोह हो जाता है कि इसका नामतक उसको प्रिय लगने लगता है। शरीरके सुखोंमें मान-बड़ाईका सुख सबसे सूक्ष्म होता है। इसकी प्राप्तिके लिये वह झूठ, कपट, बेईमानी आदि दुर्गुण-दुराचार भी करने लग जाता है। शरीरके नाममें प्रियता होनेसे उसमें दूसरोंसे अपनी प्रशंसा, स्तुतिकी चाहना रहती है। वह यह चाहता है कि जीवनपर्यन्त मेरेको मान-बड़ाई मिले और मरनेके बाद मेरे नामकी कीर्ति हो। वह यह भूल जाता है कि केवल लौकिक व्यवहारके लिये शरीरका रखा हुआ नाम शरीरके नष्ट होनेके बाद कोई अस्तित्व नहीं रखता। इस दृष्टिसे शरीरकी पूजा, मान-आदर एवं नामको बनाये रखनेका भाव किसी महत्त्वका नहीं है। परंतु

---

* ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज गीताभवन, स्वर्गाश्रममें ग्रीष्म-ऋतुमें प्रतिवर्ष पधारकर लोगोंको सत्संगका लाभ देते रहे। अपनी जीवन-लीलाके अन्तिम लगभग सवा चार वर्षतक वे लगातार गीताभवनमें ही रहे और १०० वर्षसे अधिककी आयुमें भी निरन्तर सत्संग करवाते रहे। त्याग एवं वैराग्यकी मूर्ति श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत साधकोंके लिये आदर्श एवं अनुकरणीय है।

शरीरका मान-आदर एवं नामकी स्तुति-प्रशंसाका भाव इतना व्यापक है कि मनुष्य अपने तथा अपने प्रियजनोंके साथ तो ऐसा व्यवहार करते ही हैं, प्रत्युत जो भगवदाज्ञा, महापुरुषवचन तथा शास्त्रमर्यादाके अनुसार सच्चे हृदयसे अपने लक्ष्य (भगवत्प्राप्ति)-में लगे रहकर इन दोषोंसे दूर रहना चाहते हैं, उन साधकोंके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करने लग जाते हैं। अधिक क्या कहा जाय, उन साधकोंका शरीर निष्प्राण होनेपर भी उसकी स्मृति बनाये रखनेके लिये वे उस शरीरको चित्रमें आबद्ध करते हैं एवं उसको बहुत ही साज-सज्जाके साथ अन्तिम संस्कार-स्थलतक ले जाते हैं। विनाशी नामको अविनाशी बनानेके प्रयासमें वे उस संस्कार-स्थलपर छतरी, चबूतरा या मकान (स्मारक) आदि बना देते हैं। इसके सिवाय उनके शरीरसे सम्बन्धित एकपक्षीय घटनाओंको बढ़ा-चढ़ाकर उनको जीवनी, संस्मरण आदिके रूपमें लिखते और प्रकाशित करवाते हैं। कहनेको तो वे अपने-आपको उन साधकोंका श्रद्धालु कहते हैं, पर काम वही करते हैं, जिसका वे साधक निषेध करते हैं।

श्रद्धातत्त्व अविनाशी है। अतः उन साधकोंके अविनाशी सिद्धान्तों तथा वचनोंपर ही श्रद्धा होनी चाहिये न कि विनाशी देह या नाममें। नाशवान् शरीर तथा नाममें तो मोह होता है, श्रद्धा नहीं। परंतु जब मोह ही श्रद्धाका रूप धारण कर लेता है तभी ये अनर्थ होते हैं। अतः भगवान्‌के शाश्वत, दिव्य, अलौकिक श्रीविग्रहकी पूजा तथा उनके अविनाशी नामकी स्मृतिको छोड़कर इन नाशवान् शरीरों तथा नामोंको महत्त्व देनेसे न केवल अपना जीवन ही निरर्थक होता है, प्रत्युत अपने साथ महान् धोखा भी होता है।

वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर मल-मूत्र बनानेकी एक मशीन ही है। इसको उत्तम-से-उत्तम भोजन या भगवान्‌का प्रसाद खिला दो तो वह मल बनकर निकल जायगा तथा उत्तम-से-उत्तम पेय या गङ्गाजल पिला दो तो वह मूत्र बनकर निकल जायगा। जबतक प्राण हैं, तबतक तो यह शरीर मल-मूत्र बनानेकी मशीन है और प्राण निकल जानेपर यह मुर्दा है, जिसको छू लेनेपर स्नान करना पड़ता है। वास्तवमें यह शरीर प्रतिक्षण ही मर रहा है, मुर्दा बन रहा है। इसमें जो वास्तविक तत्त्व (चेतन) है, उसका चित्र तो लिया ही नहीं जा सकता। चित्र लिया जाता है उस शरीरका, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। इसलिये चित्र लेनेके बाद शरीर भी वैसा नहीं रहता, जैसा चित्र लेते समय था। इसलिये चित्रकी पूजा तो असत् ('नहीं')-की ही पूजा हुई। चित्रमें चित्रित शरीर निष्प्राण रहता है, अतः हाड़-मांसमय अपवित्र शरीरका चित्र तो मुर्देका भी मुर्दा हुआ।

हम अपनी मान्यतासे जिस पुरुषको महात्मा कहते हैं, वह अपने शरीरसे सर्वथा सम्बन्धविच्छेद हो जानेसे ही महात्मा है, न कि शरीरसे सम्बन्ध रहनेके कारण। शरीरको तो वे मलके समान समझते हैं। अतः महात्माके कहे जानेवाले शरीरका आदर करना मलका आदर करना हुआ। क्या यह उचित है? यदि कोई कहे कि जैसे भगवान्‌के चित्रकी पूजा आदि होती है, वैसे ही महात्माके चित्रकी भी पूजा आदि की जाय तो क्या आपत्ति है? तो यह कहना भी उचित नहीं है। कारण कि भगवान्‌का शरीर चिन्मय एवं अविनाशी होता है, जबकि महात्माका कहा जानेवाला शरीर पाञ्चभौतिक होनेके कारण जड़ एवं विनाशी होता है।

भगवान् सर्वव्यापी हैं, अतः वे चित्रमें भी हैं, परंतु

महात्माकी सर्वव्यापकता (शरीरसे अलग) भगवान्‌की सर्वव्यापकताके ही अन्तर्गत होती है। एक भगवान्‌के अन्तर्गत समस्त महात्मा हैं, अत: भगवान्‌की पूजाके अन्तर्गत सभी महात्माओंकी पूजा स्वत: हो जाती है। यदि महात्माओंके हाड़-मांसमय शरीरोंकी तथा उनके चित्रोंकी पूजा होने लगे तो इससे पुरुषोत्तमभगवान्‌की ही पूजामें बाधा पहुँचेगी, जो महात्माओंके सिद्धान्तसे सर्वथा विपरीत है। महात्मा तो संसारमें लोगोंको भगवान्‌की ओर लगानेके लिये आते हैं, न कि अपनी ओर लगानेके लिये। जो लोगोंको अपनी ओर (अपने ध्यान, पूजा आदिमें) लगाता है, वह तो भगवद्विरोधी होता है। वास्तवमें महात्मा कभी शरीरमें सीमित होता ही नहीं।

वास्तविक जीवनी या चरित्र वही होता है जो साङ्गोपाङ्ग हो अर्थात् जीवनकी अच्छी-बुरी (सद्‌गुण, दुर्गुण, सदाचार, दुराचार आदि) सब बातोंका यथार्थरूपसे वर्णन हो। अपने जीवनकी समस्त घटनाओंको यथार्थरूपसे मनुष्य स्वयं ही जान सकता है। दूसरे मनुष्य तो उसकी बाहरी क्रियाओंको देखकर अपनी बुद्धिके अनुसार उसके बारेमें अनुमानमात्र कर सकते हैं, जो प्राय: यथार्थ नहीं होता। आजकल जो जीवनी लिखी जाती है, उसमें दोषोंको छिपाकर गुणोंका ही मिथ्यारूपसे अधिक वर्णन करनेके कारण वह साङ्गोपाङ्ग तथा पूर्णरूपसे सत्य होती ही नहीं। वास्तवमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके चरित्रसे बढ़कर और किसीका चरित्र क्या हो सकता है। अत: उन्हींके चरित्रको पढ़ना-सुनना चाहिये और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये। जिसको हम महात्मा मानते हैं, उसका सिद्धान्त और उपदेश ही श्रेष्ठ होता है, अत: उसीके अनुसार अपना जीवन बनानेका यत्न करना चाहिये।

उपर्युक्त सभी बातोंपर विचार करके मैं सभी परिचित संतों तथा सद्‌गृहस्थोंसे एक विनम्र निवेदन प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें सभी बातें मैंने व्यक्तिगत आधारपर प्रकट की हैं अर्थात् मैंने अपने व्यक्तिगत चित्र, स्मारक, जीवनी आदिका ही निषेध किया है। मेरी शारीरिक असमर्थताके समय तथा शरीर शान्त होनेके बाद इस शरीरके प्रति आपका क्या दायित्व रहेगा—इसका स्पष्ट निर्देश करना ही इस लेखका प्रयोजन है।

(१)

यदि यह शरीर चलने-फिरने, उठने-बैठने आदिमें असमर्थ हो जाय एवं वैद्यों-डॉक्टरोंकी रायसे शरीरके रहनेकी कोई आशा प्रतीत न हो तो इसको गङ्गाजीके तटवर्ती स्थानपर ले जाया जाना चाहिये। उस समय किसी भी प्रकारकी ओषधि आदिका प्रयोग न करके केवल गङ्गाजल तथा तुलसीदलका ही प्रयोग किया जाना चाहिये। उस समय अनवरतरूपसे भगवन्नामका जप तथा कीर्तन और श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम, श्रीरामचरितमानस आदि पूज्य ग्रन्थोंका श्रवण कराया जाना चाहिये।

(२)

इस शरीरके निष्प्राण होनेके बाद इसपर गोपीचन्दन एवं तुलसीमालाके सिवाय पुष्प, इत्र, गुलाल आदिका प्रयोग बिलकुल नहीं करना चाहिये। निष्प्राण शरीरको साधु-परम्पराके अनुसार कपड़ेकी झोलीमें ले जाया जाना चाहिये न कि लकड़ी आदिसे निर्मित वैकुण्ठी (बिमान) आदिमें।

जिस प्रकार इस शरीरकी जीवित-अवस्थामें मैं चरण-स्पर्श, दण्डवत् प्रणाम, परिक्रमा, माल्यार्पण, अपने नामकी जयकार आदिका निषेध करता आया हूँ, उसी प्रकार इस शरीरके निष्प्राण

होनेके बाद भी चरण-स्पर्श, दण्डवत् प्रणाम, परिक्रमा, माल्यार्पण, अपने नामकी जयकार आदिका निषेध समझना चाहिये।

इस शरीरकी जीवित-अवस्थाके, मृत्यु-अवस्थाके तथा अन्तिम संस्कार आदिके चित्र (फोटो) लेनेका मैं सर्वथा निषेध करता हूँ।

(३)

मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि अन्य नगर या गाँवमें इस शरीरके शान्त होनेपर इसको वाहनमें रखकर गङ्गाजीके तटपर ले जाना चाहिये और वहीं इसका अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये। यदि किसी अपरिहार्य कारणसे ऐसा होना कदापि सम्भव न हो सके तो जिस नगर या गाँवमें शरीर शान्त हो जाय, वहीं गायोंके गाँवसे जंगलकी ओर जाने-आनेके मार्ग (गोवा)-में अथवा नगर या गाँवसे बाहर जहाँ गायें विश्राम आदि किया करती हैं, वहाँ इस शरीरका सूर्यकी साक्षीमें अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये।

इस शरीरके शान्त होनेपर किसीकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

अन्तिम संस्कारपर्यन्त केवल भजन-कीर्तन, भगवन्नाम-जप आदि ही होने चाहिये और अत्यन्त सादगीके साथ अन्तिम संस्कार करना चाहिये।

(४)

अन्तिम संस्कारके समय इस शरीरकी दैनिकोपयोगी सामग्री (कपड़े, खड़ाऊँ, जूते आदि)-को भी इस शरीरके साथ ही जला देना चाहिये तथा अवशिष्ट सामग्री (पुस्तकें, कमण्डलु आदि)-को पूजामें अथवा स्मृतिके रूपमें बिलकुल नहीं रखना चाहिये, प्रत्युत उनका भी सामान्यतया उपयोग करते रहना चाहिये।

(५)

जिस स्थानपर इस शरीरका अन्तिम संस्कार किया जाय,

वहाँ मेरी स्मृतिके रूपमें कुछ भी नहीं बनाना चाहिये, यहाँतक कि उस स्थानपर केवल पत्थर आदिको रखनेका भी मैं निषेध करता हूँ। अन्तिम संस्कारसे पूर्व वह स्थल जैसे उपेक्षित रहा है, इस शरीरके अन्तिम संस्कारके बाद भी वह स्थल वैसे ही उपेक्षित रहना चाहिये। अन्तिम संस्कारके बाद अस्थि आदि सम्पूर्ण अवशिष्ट सामग्रीको गङ्गाजीमें प्रवाहित कर देना चाहिये।

मेरी स्मृतिके रूपमें कहीं भी गौशाला, पाठशाला, चिकित्सालय आदि सेवार्थ संस्थाएँ नहीं बनानी चाहिये। अपने जीवनकालमें भी मैंने अपने लिये कभी कहीं किसी मकान आदिका निर्माण नहीं कराया है और इसके लिये किसीको प्रेरणा भी नहीं की है। यदि कोई व्यक्ति कहीं भी किसी मकान आदिको मेरे द्वारा अथवा मेरी प्रेरणासे निर्मित बताये तो उसको सर्वथा मिथ्या समझना चाहिये।

(६)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद सत्रहवीं, मेला या महोत्सव आदि बिलकुल नहीं करना चाहिये और उन दिनोंमें किसी प्रकारकी कोई मिठाई आदि भी नहीं करनी चाहिये। साधु-संत जिस प्रकार अबतक मेरे सामने भिक्षा लाते रहे हैं, उसी प्रकार लाते रहना चाहिये। अगर संतोंके लिये सद्‌गृहस्थ अपने-आप भिक्षा लाते हैं तो उसी भिक्षाको स्वीकार करना चाहिये जिसमें कोई मीठी चीज न हो। अगर कोई साधु या सद्‌गृहस्थ बाहरसे आ जायँ तो उनकी भोजन-व्यवस्थामें मिठाई बिलकुल नहीं बनानी चाहिये, प्रत्युत उनके लिये भी साधारण भोजन ही बनाना चाहिये।

(७)

इस शरीरके शान्त होनेपर शोक अथवा शोक-सभा आदि नहीं करने चाहिये, प्रत्युत सत्रह दिनतक सत्सङ्ग, भजन-कीर्तन, भगवन्नाम-

जप, गीतापाठ, श्रीरामचरितमानसपाठ, संतवाणी-पाठ, भागवत-पाठ आदि आध्यात्मिक कृत्य ही होते रहने चाहिये। सनातन-हिन्दू-संस्कृतिमें इन दिनोंके ये ही मुख्य कृत्य माने गये हैं।

(८)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद सत्रहवीं आदि किसी भी अवसरपर यदि कोई सज्जन रुपया-पैसा, कपड़ा आदि कोई वस्तु भेंट करना चाहें तो नहीं लेना चाहिये अर्थात् किसीसे भी किसी प्रकारकी कोई भेंट बिलकुल नहीं लेनी चाहिये। यदि कोई कहे कि हम तो मन्दिरमें भेंट चढ़ाते हैं तो इसको फालतू बात मानकर इसका विरोध करना चाहिये। बाहरसे कोई व्यक्ति किसी भी प्रकारकी कोई भेंट किसी भी माध्यमसे भेजे तो उसको सर्वथा अस्वीकार कर देना चाहिये। किसीसे भी भेंट न लेनेके साथ-साथ यह सावधानी भी रखनी चाहिये कि किसीको कोई भेंट, चद्दर, किराया आदि नहीं दिया जाय। जब सत्रहवींका भी निषेध है तो फिर बरसी (वार्षिक तिथि) आदिका भी निषेध समझना चाहिये।

(९)

इस शरीरके शान्त होनेके बाद इस (शरीर)-से सम्बन्धित घटनाओंको जीवनी, स्मारिका, संस्मरण आदि किसी भी रूपमें प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिये।

अन्तमें मैं अपने परिचित सभी संतों एवं सद्गृहस्थोंसे विनम्र निवेदन करता हूँ कि जिन बातोंका मैंने निषेध किया है, उनको किसी भी स्थितिमें नहीं किया जाना चाहिये। इस शरीरके शान्त होनेपर इन निर्देशोंके विपरीत आचरण करके तथा किसी प्रकारका विवाद, विरोध, मतभेद, झगड़ा, वितण्डावाद आदि

अवाञ्छनीय स्थिति उत्पन्न करके अपनेको अपराध एवं पापका भागी नहीं बनाना चाहिये, प्रत्युत अत्यन्त धैर्य, प्रेम, सरलता एवं पारस्परिक विश्वास, निश्छल व्यवहारके साथ पूर्वोक्त निर्देशोंका पालन करते हुए भगवन्नाम-कीर्तनपूर्वक अन्तिम संस्कार कर देना चाहिये। जब और जहाँ भी ऐसा संयोग हो, इस शरीरके सम्बन्धमें दिये गये निर्देशोंका पालन वहाँ उपस्थित प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्तिको करना चाहिये।

मेरे जीवनकालमें मेरे द्वारा शरीरसे, वाणीसे, मनसे, जानमें, अनजानमें किसीको भी किसी प्रकारका कष्ट पहुँचा हो तो मैं उन सभीसे विनम्र हृदयसे करबद्ध क्षमा माँगता हूँ। आशा है, सभी उदारतापूर्वक मेरेको क्षमा प्रदान करेंगे।

एक बार सरल हृदयसे
दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लें कि—
मैं केवल भगवान्‌का ही अंश हूँ
और
केवल भगवान् ही मेरे अपने हैं
क्योंकि
शरीर-संसार कभी किसीके साथ रहते ही नहीं
और
परमात्मा कभी किसीका साथ छोड़ते ही नहीं।

ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनसे

मेरे विचार

वर्तमान समयकी आवश्यकताओंको देखते हुए मैं अपने कुछ विचार प्रकट कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि अगर कोई व्यक्ति मेरे नामसे इन विचारों, सिद्धान्तोंके विरुद्ध आचरण करता हुआ दिखे तो उसको ऐसा करनेसे यथाशक्ति रोकनेकी चेष्टा की जाय।

मेरे दीक्षागुरुका शरीर शान्त होनेके बाद जब वि० सं० १९८७ में मैंने उनकी बरसी कर ली, तब ऐसा पक्का विचार कर लिया कि अब एक तत्त्वप्राप्तिके सिवाय कुछ नहीं करना है। किसीसे कुछ माँगना नहीं है। रुपयोंको अपने पास न रखना है, न छूना है। अपनी ओरसे कहीं जाना नहीं है, जिसको गरज होगी, वह ले जायगा। इसके बाद मैं गीताप्रेसके संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सम्पर्कमें आया। वे मेरी दृष्टिमें भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। मेरे जीवनपर उनका विशेष प्रभाव पड़ा।

मैंने किसी भी व्यक्ति, संस्था, आश्रम आदिसे व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं जोड़ा है। यदि किसी हेतुसे सम्बन्ध जोड़ा भी हो, तो वह तात्कालिक था, सदाके लिये नहीं। मैं सदा तत्त्वका अनुयायी रहा हूँ, व्यक्तिका नहीं।

मेरा सदासे यह विचार रहा है कि लोग मुझमें अथवा किसी व्यक्तिविशेषमें न लगकर भगवान्‌में ही लगें। व्यक्तिपूजाका मैं कड़ा निषेध करता हूँ।

मेरा कोई स्थान, मठ अथवा आश्रम नहीं है। मेरी कोई गद्दी नहीं है और न ही मैंने किसीको अपना शिष्य, प्रचारक अथवा उत्तराधिकारी बनाया है। मेरे बाद मेरी पुस्तकें ही साधकोंका मार्ग-दर्शन करेंगी। गीताप्रेसकी पुस्तकोंका प्रचार, गोरक्षा तथा सत्संगका मैं सदैव समर्थक रहा हूँ।

मैं अपना चित्र खींचने, चरण-स्पर्श करने, जय-जयकार करने, माला पहनाने आदिका कड़ा निषेध करता हूँ।

मैं प्रसाद या भेंटरूपसे किसीको माला, दुपट्टा, वस्त्र,

कम्बल आदि प्रदान नहीं करता। मैं खुद भिक्षासे ही शरीर-निर्वाह करता हूँ।

सत्संग-कार्यक्रमके लिये रुपये (चन्दा) इकट्ठा करनेका मैं विरोध करता हूँ।

मैं किसीको भी आशीर्वाद/शाप या वरदान नहीं देता और न ही अपनेको इसके योग्य समझता हूँ।

मैं अपने दर्शनकी अपेक्षा गंगाजी, सूर्य अथवा भगवद्विग्रहके दर्शनको ही अधिक महत्त्व देता हूँ।

रुपये और स्त्री—इन दोके स्पर्शको मैंने सर्वथा त्याग किया है।

जिस पत्र-पत्रिका अथवा स्मारिकामें विज्ञापन छपते हों, उनमें मैं अपना लेख प्रकाशित करनेका निषेध करता हूँ। इसी तरह अपनी दुकान, व्यापार आदिके प्रचारके लिये प्रकाशित की जानेवाली सामग्री (कैलेण्डर आदि)-में भी मेरा नाम छापनेका मैं निषेध करता हूँ। गीताप्रेसकी पुस्तकोंके प्रचारके सन्दर्भमें यह नियम लागू नहीं है।

मैंने सत्संग (प्रवचन)-में ऐसी मर्यादा रखी है कि पुरुष और स्त्रियाँ अलग-अलग बैठें। मेरे आगे थोड़ी दूरतक केवल पुरुष बैठें। पुरुषोंकी व्यवस्था पुरुष और स्त्रियोंकी व्यवस्था स्त्रियाँ ही करें। किसी बातका समर्थन करने अथवा भगवान्‌की जय बोलनेके समय केवल पुरुष ही अपने हाथ ऊँचे करें, स्त्रियाँ नहीं।

कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनोंमें मैं भक्तियोगको सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ और परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानवजीवनकी पूर्णता मानता हूँ।

जो वक्ता अपनेको मेरा अनुयायी अथवा कृपापात्र बताकर लोगोंसे मान-बड़ाई करवाता है, रुपये लेता है, स्त्रियोंसे सम्पर्क रखता है, भेंट लेता है अथवा वस्तुएँ माँगता है, उसको ठग समझना चाहिये। जो मेरे नामसे रुपये इकट्ठा करता है, वह बड़ा पाप करता है। उसका पाप क्षमाके योग्य नहीं है।

अन्तिम प्रवचन *

एक बहुत श्रेष्ठ, बड़ी सुगम, बड़ी सरल बात है। वह यह है कि किसी तरहकी कोई इच्छा मत रखो। न परमात्माकी, न आत्माकी, न संसारकी, न मुक्तिकी, न कल्याणकी, कुछ भी इच्छा मत करो और चुप हो जाओ। शान्त हो जाओ। कारण कि परमात्मा सब जगह शान्तरूपसे परिपूर्ण है। स्वतः-स्वाभाविक सब जगह परिपूर्ण है। कोई इच्छा न रहे, किसी तरहकी कोई कामना न रहे तो एकदम परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, तत्त्वज्ञान हो जाय, पूर्णता हो जाय!

यह सबका अनुभव है कि कोई इच्छा पूरी होती है, कोई नहीं होती। सब इच्छाएँ पूरी हो जायँ यह नियम नहीं है। इच्छाओंको पूरा करना हमारे वशकी बात नहीं है, पर इच्छाओंका त्याग कर देना हमारे वशकी बात है। कोई भी इच्छा, चाहना नहीं रहेगी तो आपकी स्थिति स्वतः परमात्मामें होगी। आपको परमात्मतत्त्वका अनुभव हो जायगा। कुछ चाहना नहीं, कुछ करना नहीं, कहीं जाना नहीं, कहीं आना नहीं, कोई अभ्यास नहीं। बस, इतनी ही बात है। इतनेमें ही पूरी बात हो गयी! इच्छा करनेसे ही हम संसारमें बँधे हैं। इच्छा सर्वथा छोड़ते ही सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मामें स्वतः-स्वाभाविक स्थिति है।

प्रत्येक कार्यमें तटस्थ रहो। न राग करो, न द्वेष करो।

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भए भव पार॥

(दोहावली ९४)

एक क्रिया है और एक पदार्थ है। क्रिया और पदार्थ यह प्रकृति है। क्रिया और पदार्थ दोनोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके एक

---

* ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके परमधाम पधारनेके पूर्व दिनाङ्क २९-३० जून २००५ को गीताभवन स्वर्गाश्रममें दिया गया अन्तिम प्रवचन।

भगवान्‌के आश्रित हो जायँ। भगवान्‌के शरण हो जायँ, बस। उसमें आपकी स्थिति स्वतः है। 'भूमा अचल शाश्वत अमल सम ठोस है तू सर्वदा'—ऐसे परमात्मामें आपकी स्वाभाविक स्थिति है। स्वप्नमें एक स्त्रीका बालक खो गया। वह बड़ी व्याकुल हो गयी। पर जब नींद खुली तो देखा कि बालक तो साथमें ही सोया है—तात्पर्य है कि जहाँ आप हैं, वहाँ परमात्मा पूरे-के-पूरे विद्यमान है। आप जहाँ हैं, वहीं चुप हो जाओ!!

श्रोता—कल आपने बताया कि कोई चाहना न रखे। इच्छा छोड़ना और चुप होना दोनोंमें कौन ज्यादा फायदा करता है?

स्वामीजी—मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं, मैं और किसीका नहीं हूँ, और कोई मेरा नहीं है। ऐसा स्वीकार कर लो। इच्छारहित होना और चुप होना—दोनों बातें एक ही हैं। इच्छा कोई करनी ही नहीं है, भोगोंकी, न मोक्षकी, न प्रेमकी, न भक्तिकी, न अन्य किसीकी।

श्रोता—इच्छा नहीं करनी है, पर कोई काम करना हो तो?

स्वामीजी—काम उत्साहसे करो, आठों पहर करो, पर कोई इच्छा मत करो। इस बातको ठीक तरहसे समझो। दूसरोंकी सेवा करो, उनका दुःख दूर करो, पर बदलेमें कुछ चाहो मत। सेवा कर दो और अन्तमें चुप हो जाओ। कहीं नौकरी करो तो वेतन भले ही ले लो, पर इच्छा मत रखो।

सार बात है कि जहाँ आप हैं, वहीं परमात्मा हैं। कोई इच्छा नहीं करोगे तो आपकी स्थिति परमात्मामें ही होगी। जब सब परमात्मा ही हैं तो फिर इच्छा किसकी करें? संसारकी इच्छा है, इसलिये हम संसारमें हैं। कोई भी इच्छा नहीं है तो हम परमात्मामें हैं।



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सच्ची और पक्की बात

यदि आपको दुःख, अशान्ति, आफत चाहिये तो शरीर–संसारसे सम्बन्ध जोड़ लो, उनको अपना मान लो

और

यदि सुख, शान्ति, आनन्द, मस्ती चाहिये तो परमात्मासे सम्बन्ध जोड़ लो, उनको अपना मान लो।

चुनाव आपके हाथमें है!

ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनसे